श्रीमदग्रस्वामि कृत
रहस्यत्रय

(दीपिका टीका सहित)

व्याख्याकार

श्री १०८ अनन्त पं० रामवल्लभाशरणजी महाराज
जानकीघाट

प्रकाशक :-

स्वामी गिरिराजदासजी रामायणी

जगद्गुरू श्रीरामानन्दाचार्य पीठ
वासुदेवघाट, अयोध्याजी ।

उपोद्घात

परमप्रेमास्पद भगवच्चरणपरायण सज्जनों को विदित हो कि **'आचिनोति हि शास्त्रार्थानाचारे स्थापयित्यपि स आचार्य्य इति प्रोक्तः सर्वलोकोपकारकः'** इत्यादि वाक्यों से प्रसिद्ध है कि आचार्यों के मन में सदा ही उपकार परायण हुये जीवों की अनाद्यविद्या निवारण हो और वे अपने वास्तविक सुख के भागी बनें, यह उत्कण्ठा सदा बनी रहती है। इस आशय पर श्रीमदग्रस्वामी जी मंत्रार्थ को लिख रहे हैं क्योंकि मंत्रार्थ ज्ञान से ही पुरुष सर्ववेदवेत्ता बन सकता है और जो वेदवेत्ता है वही परमात्मा को जान सकता है और यह मंत्र तो विशेषतः संसारोच्छेदक तथा विशेषतः प्रभावशाली है, इस बात को प्रायः सभी वैष्णव जानते हैं। मंत्रज्ञान से ही अर्थपञ्चक ज्ञान हो जाता है, यह भी मंत्रार्थ से ही जाना जायगा। इसीलिये इसको संक्षेपतः सरल भाषा में व्याख्यान कराकर श्रीमणिरामजी की छावनी के महन्त जी अपने व्यय से मुद्रित कराके वैष्णवों को बाँट रहे हैं ।

निवेदक :-
पं० रामवल्लभाशरण

श्री सीतारामचन्द्राभ्यां नमः
श्री हनुमते नमः
ॐ नमो भगवते रामानन्दाचार्याय

श्रीमते पयोहारिणे नमः **रहस्यत्रय** श्रीमते अग्रदेवाचार्याय नमः

सर्व सज्जनों को विदित हो कि सर्व शास्त्रों का निचोड़ सिद्धान्त तथा सबका मूल श्रीराममन्त्र है, इसमें वृद्धि के भय से प्रमाण नहीं लिखे जाते हैं, सहृदय जन इसको स्वयं जानते ही हैं । यह सार्वजनिक सुप्रसिद्ध वैष्णव सिद्धान्त है कि मंत्रार्थ के बिना भी ज्ञान यथार्थ रूप से फलप्रद नहीं हो सकता है। अतः आचार्य श्रेष्ठ परम करुणामय श्रीमदग्रस्वामी जी **'रहस्यत्रय'** को व्याख्यान करते हुए प्रथम मङ्गलाचरण करते हैं ।

मूल - **श्रीरामः सर्व लोकानां नायकः करुणार्णवः ।**
ददातु स्वपदाम्भोजं सर्वदुःखनिवर्त्तकम् ॥१॥
अर्थ - करुणा के समुद्र, सर्व लोकों के नायक श्रीरामजी सब दुःखों के निवारण करने वाले अपने चरणारविन्दों को भक्तों के हृदय में समर्पण करें ।

भावार्थ - इसका तात्पर्य यह है कि जीवों को अपने अपने कर्मवश दैहिकादिक अनेक प्रकार के दुःख प्राप्त होते रहते हैं उनके लिए साधन भी किये जाते हैं, तथापि दुःख सब तरह से निमूल नहीं होते हैं। क्योंकि उन दुःखों की निवारिका एक मात्र 'भगवच्चरणारविन्द की प्राप्ति होना ही' है और उन चरणों की प्राप्ति जीवों को अपने साधन से नहीं होती है, किन्तु वह भगवान् श्रीरामजी की कृपा के अधीन है। इसलिए प्रार्थना करते हैं कि उन्हें कृपा करके हमारे समान उनके चरणचिन्तकों को वह देवें, क्योंकि प्रभु श्रीराम जी ही सर्व लोकों के नायक (स्वामी) हैं। अतः अपनी विभूति की रक्षा करना उनका स्वकार्य है। और फिर वे करुणा के समुद्र हैं तब हमारे सबों के दुःख का निवारण करना उनके लिए अपना कर्तव्य है । इति ॥१॥

मूल - **रामोङेन्तो वह्निपूर्वो नमोन्तःस्यातषडक्षरः ।**
तारको मन्त्रराजोयं संसार विनिवर्तकः ॥२॥

अब आचार्यवर्य्य श्री अग्रस्वामी जी मन्त्र के उद्धार को लिखते हैं, जिसमें उस मन्त्र में किसी को सन्देह न होवे । वह उद्धार पंचरात्रयादि ग्रन्थों में प्रसिद्ध है ।
अर्थ - जिसमें 'राम' शब्द डेन्त' अर्थात चतुर्थी विभक्ति युक्त होवे और 'वह्नि' बीज पूर्व में हो 'नमः' शब्द अन्त में होवे इस तरह छः अक्षर जिसमें होवें वह तारक श्रीराममन्त्र है । यह मन्त्र सब मन्त्रों का राजा है, अन्य सब मन्त्र इसकी प्रजा हैं । अर्थात् यह मन्त्र सबका मूल है, संसार का विशेषतः छुड़ाने वाला है, इसका तात्पर्य यह है कि यद्यपि भगवान् श्रीराम जी के अनन्त मन्त्र हैं, वे सब संसार को छुड़ाकर मुक्ति के देने वाले हैं, तथापि यह षडक्षर मन्त्र विशेषतः संसार को छुड़ाकर मुक्ति का देने वाला है जिन्होंने यह कहा है कि यह मन्त्र केवल सांसारिक पदार्थों का देने वाला है, मुक्ति प्रद नहीं है उनका कथन इस वचन से परास्त हुआ । इति ॥२॥

मूल - **इति श्रीनारदपंचरात्रयाद्युक्तरीत्या**
मुमुक्षुभिः प्रपन्नैः सदाचार्य्य कृपाकटाक्षेण ॥
रहस्यानित्रीणि ज्ञातव्यानि श्रीराममंत्रराजः ।
श्रीमदष्टाक्षरः सकृदेवप्रपन्नयेत्यादीनि ॥३॥

अर्थ - श्री नारदपंचरात्रयादि उक्त रीति से मुमुक्षु प्रपन्नों को सदाचार्य्य कृपाकटाक्ष से तीन रहस्य जानना चाहिये । तात्पर्य यह है कि जैसा कि नारदपंचरात्रयादि प्रामाणिक ग्रन्थों में ये तीन रहस्य मिल रहे हैं उन्हें सदाचारनिष्ठ आचार्य्य से जिसको संसार की अनित्यता, दु:खरूपता तथा अनेक तरह की झंझटों से संसार के छोड़ने की इच्छा और अपने नित्य एक रस सुखमय भगवत्कैंकर्य परायण होना, इन सबका पूर्ण निश्चय होने से संसार छोड़कर अपने वास्तविक स्वरूप प्राप्ति की इच्छा हुई हो उन मुमुक्षु भगवच्छरणागत वालों को तीन रहस्य जानना चाहिये अर्थात् शास्त्रों से देखकर अपने मन से ही उन्हें तीन रहस्यों को जान लेना यह कल्याणकारक नहीं है किन्तु आचार्य्य द्वारा ही इन्हें जानना चाहिये । वे तीन रहस्य ये हैं- एक तो **षडक्षर मंत्रराज श्रीराममन्त्र**, दूसरा **अष्टाक्षर शरणागति मन्त्र**, तीसरा '**सकृदेव प्रपन्नाय**' इत्यादि जो श्रीमद्रामायण में जीवों के कल्याणार्थ श्रीराम जी का प्रतिज्ञा वाक्य है जिसे **चरममन्त्र** कहते हैं । यही तीन रहस्य जानने योग्य हैं । एकान्त में आचार्य द्वारा जिनका उपदेश होवे वे रहस्य कहलाते हैं । इति ॥३॥

मूलः - **तत्र श्रीमत् षडक्षरमन्त्रराजः षट्पदात्मकः**
पंचपदात्मकश्चेति ॥४॥

अर्थ - तहाँ पर श्रीमत् **षडक्षर मंत्रराज** छः पद वाला है । और पंच पद वाला भी है । इति ॥४॥

मूल - **तत्र प्रथमं पदं रकारः अव्यक्त चतुर्थ्यात्मकः द्वितीयं पदं अकारः प्रथमान्तः तृतीयंपदं मकारः प्रथमान्तः चतुर्थं पदं रामायेति चतुर्थ्यंतः पंचमपदं नेत्यव्ययं षष्ठं पदं इति षष्ठ्यंतं ॥५॥**

अर्थ - वे इस तरह हैं जो प्रथम बीजाक्षर है उसमें तीन पद हैं। पहला पद **रकार** है जिसमें चतुर्थी विभक्ति है, पर अव्यक्त है । अर्थात् किसी को मालूम नहीं पड़ती है । रकार को अव्यय मानकर उसके आगे जो विभक्ति आई है उसका लोप हो गया। इसी से वह अव्यक्त चतुर्थ्यात्मक कहा जाता है । दूसरा पद **आकार** है । वह प्रथमांत है अर्थात् उसमें भी प्रथमा विभक्ति है पर लुप्त है इसी से नही मालूम पड़ती है । तीसरा **मकार** है । यह भी प्रथमांत है, इसमें भी प्रथम विभक्ति का लोप है। किसी के सम्मति में इसमें अर्थात् तृतीय पद में, षष्ठी विभक्ति है। तीन पद बीज में हुये, चतुर्थ पद **'रामाय'** है। इसमें चतुर्थी विभक्ति स्पष्ट है । पाँचवाँ पद **'नमः'** है यह पंचपदात्मक हुआ । और जिनके सम्मत में 'न' और 'मः' यह पृथक् पृथक् हैं उनके मत में छः पद हैं। 'नमः' पद दो प्रकार का है एक, 'न' अव्यय है और 'मः' षष्ठ्यन्त है । दूसरा 'नमः' शब्द अव्यय रूप है । इस तरह किसी के मत से पाँच पद और किसी के मत से छः पद हैं । नमः पद ही को अखण्ड सखण्ड मानने से पाँच पद और छः पद का भेद है और दोनों ही ठीक हैं। इति ॥५॥

मूल - **तत्र प्रथमपदेन रकारेण हेय प्रत्यनीक कल्याण गुणगणैकतानः सर्व जगत् कारणभूतः सर्वं रक्षकः सर्वशेषी भगवान् सीतापतिः श्रीरामः प्रतिपाद्यते ॥६॥**

अर्थ - तहाँ पर प्रथम पद **'रकार'** है । हेय रूप जो अनिष्ट गुण हैं (अर्थात् काम, क्रोध, लोभादिक) इनके प्रत्यनीक नाम विरोधी जो कल्याण गुण हैं उन गुणगणों के एकतान् अर्थात् स्थान रूप और सर्व जगत् कारणभूत, सर्वरक्षक, सर्वशेषी, भगवान् श्रीसीता पति श्रीरामजी प्रतिपादित होते हैं । अर्थात् 'रकार' का अर्थ श्री रामजी हैं, 'रकार' श्रीरामजी का प्रतिपादक है और श्रीरामजी प्रतिपाद्य हैं। पर उनके इतने गुण भी साथ ही साथ 'रकार' से प्रतीत होते हैं कि श्रीरामजी सब जगत् के कारण और सबके रक्षक हैं क्योंकि सर्वशेषी हैं, सब कुछ उनका शेष है । जो अपने आधीन अपनी वस्तु हौवे उसको शेष कहते हैं इससे जगत् शेष है और श्री राम जी शेषी हैं तथा श्रीरामजी भगवान हैं । ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वैर्य, तेज और वीर्य ये छः गुण पूर्ण जिसमें हों वह भगवान् कहे जाते हैं। तात्पर्य यह है कि ज्ञान, शक्ति आदि पूर्ण रूप से श्रीरामजी ही में हैं, इसी से वे मुख्य भगवत्-पद-वाच्य हैं। और सभी में यही गुण थोड़े-थोड़े हैं, इसी से वे गौण भगवत् पदवाच्य हैं तथा सीतापतिः श्रीसीताशब्दवाच्या मुख्य श्री के पति श्रीरामजी ही हैं। जो सर्वशक्ति शिरोमणिभूता हैं उनके पति कहने से अपरिमिति गुणयुक्त आप (श्रीरामजी) को बतलाया। ऐसे श्री रामजी 'रकार' से प्रतिपाद्य हैं । इति ॥६॥

मूल - **एनेन रक्षितान्तर प्रतिपत्तिर्व्यावर्त्यते ॥७॥**
अर्थ - इससे दूसरे रक्षक की जो प्रतिपत्ति (प्रतीति) होती हैं उसका व्यावर्तन अर्थात् निवारण हुआ । तात्पर्य यह है कि जब सर्वरक्षक श्रीरामजी हैं, यह 'रकार' से बोध होगा तब दूसरा रक्षक है, यह मन में कैसे आवेगा । इति ॥७॥

मूल - **द्वितीयपदेनाकारेण अन्यशेषत्व निवृत्तिर्भगवदनन्यार्हशेषत्वं देवतांतरादि शेषत्त्व व्यावृत्तिश्च प्रतिपाद्यते ॥८॥**
अर्थ - द्वितीय पद जो **'आकार'** है उससे अन्य शेषत्त्व की निवृत्ति और भगवान् का अनन्याह शेष जीव है और देवतांतरादि अन्य देवताओं की शेषत्वव्यावृत्ति प्रतिपादित होती है । तात्पर्य यह है कि मंत्र में दूसरा पद **'आकार'** है । उस पद से तीन अर्थ निकलते हैं । एक तो अन्य शेषत्व की निवृत्ति (अर्थात् भगवान् को छोड़कर दूसरे किसी का शेष यह जीव नहीं है) एक अर्थ यह हुआ । भगवान् का अनन्याह शेष यह जीव है, यह दूसरा अर्थ है । अर्थात् ब्रह्मादि अन्य देवों का शेष यह जीव नहीं है । भगवान् श्रीरामजी को छोड़कर दूसरे देवताओं का शेष बनना यह सर्वथा भूल है तथा स्वस्वरूप का विरोधी है । यही तीन अर्थ द्वितीय पद **'आकार'** से जाने जाते हैं । इति ॥८॥

मूल - **तृतीयपदेन मकारेण ज्ञानानन्दस्वरूपो ज्ञानानन्दगुणको अणुपरिमाणो देहादिविलक्षणः स्वयं प्रकाशो नित्यरूपो जीवः प्रतिपाद्यते ॥९॥**
अर्थ - तृतीयपद **'मकार'** से ज्ञानानन्द स्वरूप, ज्ञानानन्द-गुणक, अणुपरिमाणु, देहादि से विलक्षण स्वयं प्रकाश नित्य रूप जीव का प्रतिपादन होता है । अर्थात् **'मकार'** वाच्य जीव है, वह ज्ञानानन्द स्वरूप है और ज्ञानानन्द गुण वाला भी है । किसी के मत में केवल ज्ञानानन्द स्वरूप ही है । ज्ञानानन्द गुण नहीं मानते हैं । परंच साम्प्रदायिक सिद्धान्त यह है कि ज्ञानानन्द जीव का स्वरूप भी है और ज्ञानानन्द गुण भी इसके हैं। तात्पर्य यह कि स्वरूप भूत भी ज्ञानानन्द है और गुणभूत भी ज्ञानानन्द है । गुणभूत ज्ञानानन्द का संकोच विकास होता है, स्वरूपभूत ज्ञानानन्द एक रस है, उसमें न संकोच है न विकास है। जिनके मत में केवल ज्ञानानन्द स्वरूप है वह अविद्या से तिरोहित अर्थात् ढक जायेगा तब उनके मत से स्वरूप का ही नाश माना जायगा । क्योंकि ज्ञान प्रकाश रूप है उस प्रकाश को अविद्या ने निराश कर दिया तब स्वरूप का ही नाश हो गया। और जब ज्ञानानन्द गुण है। तब गुणभूत ज्ञानानन्द का तिरोभाव होता है। स्वरूप एकरस रहता है उसका तिरोधान नहीं, अतः ज्ञानानन्द स्वरूप और ज्ञानानन्द गुण दोनों हैं, यह श्री अग्रस्वामीजी का सिद्धान्त ठीक है। मकार जीव का प्रतिपादक है । जीव मकार से प्रतिपाद्य है परंच उसके इतने विशेषण हैं - **ज्ञानानन्दस्वरूप १, ज्ञानानन्दगुणक २, अणुपरिमाण ३, देहादिविलक्षण ४, स्वयंप्रकाश ५ तथा नित्यरूप ६** ये छः इसके विशेषण हैं। ऐसा जीव मकार से प्रतिपादित है । अर्थात् मकार का अर्थ जीव है जो छः विशेषणों से युक्त है । भिन्न-भिन्न धातुओं से मकार

निष्पन्न (सिद्ध) होता है जैसे कि **'मन ज्ञाने मसि परिमाणे'** एवमादि धातुओं से मकार सिद्ध होता है, इसी से इसके इतने अर्थ होते हैं ॥९ ॥

मूल - **मकार वाच्यो जीवो रकार वाच्याय
रामायैव शेषभूत इति वाक्यार्थः ॥१० ॥**

अर्थ - समस्त वाक्य का अर्थ यह हुआ कि मकारवाच्य जो जीव है वह रकार-वाच्य श्रीरामजी के ही लिये शेषभूत है। जैसे चन्दन, कुसुम, ताम्बूल अपने लिये होता है, हम चाहे जैसे उसका विनियोग कर सकें अर्थात् भोग सकें। वह जड़ है, परतन्त्र है, कुछ कह नहीं सकता है, उसी तरह जीव भी चेतन होते हुए श्रीरामजी के लिये शेषभूत है, जैसे वे चाहें वैसे इसको रख सकते हैं। यह कुछ कर नहीं सकता है और न कुछ कह ही सकता है । यद्यपि चेतन है तथापि उनके सर्वथा परतन्त्र है इसी से जड़ वस्तु के समान सदा उनके आधीन रहता है, वह बीज का वाक्यार्थ हुआ ॥१० ॥

मूल - **चतुर्थपदेन रामाय इत्यनेन सचेतनाचेतन रमयितृत्त्वं, श्रीरमयितृत्वं च उभयलिंगत्वं, सर्व प्राप्यत्त्वं, सर्वव्यापकत्त्वं, सर्वविधबन्धुत्त्वं, उभयविभूतिनायकत्वं सत्यानन्दचिद्रूपत्वं च प्रतिपाद्यते ॥११ ॥**

अर्थ - अब चतुर्थ पद 'रामाय' है । इससे यह बोध होता है कि श्रीरामजी ही चेतनाचेतन सब में रमने वाले हैं । व्यापक होते हुए रमयितृत्व श्रीरामजी ही में है, दूसरे में नहीं, और श्रीजी को भी रमाने वाले हैं और सगुण-निर्गुण-उभय-लिंगत्व, तथा सर्वप्राप्यत्व और सर्व व्यापकत्व, सर्व विधबन्धुत्व उभयविभूतिनायकत्व तथा सत्यानन्दचिद्रूपत्व प्रतिपादित होता है । तात्पर्य यह है कि श्रीरामजी चेतनाचेतन सबको तत्तत-शक्तिप्रदान द्वारा संसार में उन्हें प्रसन्न रखते हैं यही चेतन अचेतन का रमयितृत्व है और श्रीजी सर्व ऐश्वैर्य सम्पन्ना हैं तथा सर्वशक्ति शिरोमणिभूता हैं, समस्त ऐश्वर्य की अधिष्ठात्री देवी हैं, उनको भी रमाने वाले कहने से श्रीरामजी में इन सब गुणों का वैलक्षण्य दिखलाया । अथवा, मुग्धविदग्धरूपा अनेक तरह की लीलाओं से श्रीजी को भी रमाने वाले हैं यह कहने से आप में अद्भुत रमाने की शक्ति दिखलाई। जो श्रीजी सबको अपने गुणों से प्रसन्न रखने वाली हैं, मातृत्व प्रयुक्त वात्सल्य से सबको सब दशा में प्रसन्न रखने वाली हैं, उन्हें भी आप रमाते हैं तब आप में इन गुणों की विलक्षणता आश्चर्य रूपा सूचित हुई तथा उभयलिंगत्व सगुण और निर्गुण दोनों तरह के चिह्न आप में पाये गये । राम शब्द कहने से ही सब में व्यापक निर्गुणरूप अर्थतः जान पड़ता है । और जब नाम है तब मूर्तिमान् सगुण रूप है इससे राम शब्द निर्गुण-सगुण दोनों का बोधक है और सर्व प्राप्यत्व भी इसी शब्द से जाना जाता है क्योंकि जब आप सगुण निर्गुण दोनों रूप हैं तब सर्व जीवों के प्राप्य आप ही हैं आपको छोड़कर दूसरा प्राप्य नही है। इसी से सर्वव्यापकत्व भी सिद्ध हुआ । जब सर्व प्राप्य हैं तब सर्वव्यापक सिद्ध हो चुके, क्योंकि जो सब जगह व्यापक नहीं है वह सबको प्राप्य कैसे हो सकेगा ? और, सर्वविधबन्धुत्व भी 'राम' शब्द से ही मालूम होता है अर्थात् सब

जीवों के सब प्रकार के नाते भगवान् श्रीरामजी में ही पर्यवसानता (अर्थात् समाप्ति) को प्राप्त होते हैं । तात्पर्य्य यह कि जो जीव जिस नाते से चाहे उसी तरह उन्हें समझकर उनमें प्रेम कर सकता है एवं उभय विभूतिनायक भी श्री रामजी ही हैं । यह भी 'राम' शब्द का अर्थ है । एकपाद्विभूति और त्रिपाद्विभूति दोनों विभूतियों के नायक (स्वामी) श्रीरामजी हैं । जब सर्व विभूतियों के स्वामी वही हैं तब हम उस विभूति को अपना समझें यह बड़ी भूल है तथा इसमें दण्ड के योग्य समझे जायेंगे यह राम शब्द से जानना चाहिये। तथा सत्यानन्द-चिद्रूपत्व भी श्रीरामजी में 'राम' शब्द से ही जाना जाता है इतना अर्थ 'राम' शब्द से जाना जाता है। इसका विशेष विस्तार भय से श्री अग्रस्वामीजी ने पृथक-पृथक नहीं दिखलाया, विस्तार से मंत्र जापक उसका चिन्तन नहीं कर सकता है, इसी हेतु से संक्षेप में कह दिया ॥११॥

मूल - **अनेन रागद्वेष करणं अबन्धुभूतेषु बन्धुत्व प्रतिपत्तिश्च व्यावर्त्यते ॥१२॥**
अर्थ - इससे किसी में राग अथवा द्वेष करना यह उचित नहीं है और सब जो सम्बन्धी हैं उनमें बन्धुत्व की प्रतीति होती है, उनमें बन्धुत्व की प्रतिपत्ति (निश्चय) कि ये हमारे बन्धू हैं, हमारे नातेदार हैं, सम्बन्धी हैं, ऐसा मानना और उनमें राग द्वेष करना यह सर्वथा भूल है । क्योंकि जब सब प्रकार के नाते श्रीरामजी में ही घटते हैं तब दूसरा बन्धु कैसे हो सकता है ? बन्धु कहते हैं नातेदार को, परिवार को, क्योंकि वे सब अबन्धुभूत हैं, उनमें बन्धुत्व का निश्चय करना इसका निवारण किया जाता है । अर्थात् जीव के सब नाते श्रीरामजी में ही घट सकते हैं औरों में नहीं । ये केवल औपाधिक भ्रम से हमें बन्धुत्व प्रतीति होती है। यह राम शब्द का अर्थ हुआ ॥१२॥

मूल - **चतुर्थ्या स्वरूपानुरूप कैंकर्य प्रार्थनोच्यते ॥१३॥**
अर्थ - चतुर्थी विभक्ति से स्वरूप के अनुरूप कैंकर्य की प्रार्थना कही जाती है । अर्थात् चतुर्थी से श्रीरामजी के लिये यह प्रार्थना है कि जैसा हमारा स्वरूप है वैसा हमें कैंकर्य मिलना चाहिये, हम नहीं समझ सकते हैं कि हम किस कैंकर्य के अधिकारी हैं, हमारे स्वरूप के अनुकूल जो कैंकर्य होवे वह हमें दिया जावे, क्योंकि चतुर्थी तादर्थ्य है । हम आपके लिये हैं जो हमें उचित हो वह सेवा मिलनी चाहिये । यह चतुर्थी के अर्थ से होता है ॥१३॥

मूल - **अनेन प्राप्त विषयान्तर सेवा व्यावर्त्यते ॥१४॥**
अर्थ - इससे जो दूसरे विषयों की सेवा प्राप्त हो रही है उसकी निवृत्ति हुई । क्योंकि जब जीव सब तरह से भगवान् श्री रामजी की ही सेवा का अधिकारी है तब विषयों की सेवा करना यह सर्वथा भूल है ॥१४॥

मूल - **पंचम पदेन नेत्यनेन भगवदनन्य शेषत्वं तदनन्य प्रयोजनत्वं स्व स्वातंत्रयं च व्यावर्त्यते ॥१५॥**

अर्थ - पाँचवा पद 'न' है इससे जीव भगवान् श्रीरामजी का अनन्य शेष है और भगवान् को छोड़कर दूसरे से कुछ प्रयोजन इसका नहीं है, तथा यह जीव स्वतंत्र नहीं है, यह प्रतिपादित होता है । अर्थात् जीव का भगवान् को छोड़कर दूसरों से कुछ प्रयोजन भी नहीं है, क्योंकि जब सब प्रकार से हितकारी बन्धु भगवान् श्रीरामजी ही हैं, तब दूसरों से प्रयोजन ही क्या है ? और इसका परतंत्र स्वरूप है स्वतन्त्र नहीं है क्योंकि सर्वेन्द्रिय प्राण मन बुद्धि आदि के प्रवर्तक भगवान श्री रामजी हैं तब यह जीव स्वतन्त्र कैसे ? इससे 'न' इस पद से इसकी स्वतन्त्रता भी निवारण की गयी ॥१५॥

मूल - **षष्ठपदेन म इत्यनेन जीव वाचकेन जीवस्य भगवदनन्यार्ह शेषत्वं तत्कैंकर्यं प्रयोजनत्वं तत्पारतंत्रयस्वरूपत्वं च प्रतिपाद्यते ॥१६॥**

अर्थ - छठवाँ पद 'मः' यह जीववाचक है इससे जीव का भगवदनन्याह, शेषत्व और भगवान् के कैंकर्य्यं ही का प्रयोजनत्व और भगवान् के परतंत्र इसका स्वरूप है यह प्रतिपादित होता है । तात्पर्य यह कि 'मकार' पचीसवाँ है और जीव को कहने वाला है इससे यह जीव भगवान् श्रीरामजी ही के अनन्य शेष होने के योग्य है । और जब भगवान् का अनन्यार्ह शेष है तब भगवान् का कैंकर्य ही इसका सब प्रकार से पुरुषार्थ, कर्तव्यार्थ प्रयोजन है तथा इस जीव का स्वरूप भगवान् श्रीरामजी के परतंत्र रहने वाला है। जैसे चन्दन, कुसुमादि पुरुष की इच्छा के आधीन हैं वैसे ही यह जीव भी भगवान के सब तरह से आधीन है। यह अर्थ 'मकार' का होता है ॥१६॥

मूल - **तत्र वाक्यार्थः मकारवाच्यो जीवो रकार वाच्याय रामायैव न स्वस्मै न अन्यस्मै तद्भोग्य भूत इत्यर्थः ॥१७॥**

अर्थ - अब वाक्यार्थ यह है कि 'मकार' वाच्य जीव 'रकार वाच्य श्रीरामजी के लिये है, न अपने लिये है न औरों के लिये है किन्तु श्रीरामजी का ही भोग्यभूत है, यह वाक्यार्थ हुआ। तात्पर्य यह है कि जीव मकारवाच्य है, वह 'रकार' वाच्य सर्वेश्वर परमात्मा परब्रह्म श्रीरामजी के लिये है जैसा चाहें वे वैसे ही इसे भोग सकते हैं, रख सकते हैं, इसको कुछ उजुर नहीं है, न यह अपने लिये है न दूसरों के लिये है । अर्थात् अपने वास्ते भी कुछ कर सके यह नहीं है और दूसरों के वास्ते भी यह नहीं है, सब प्रकार से उनका ही है वे जैसा चाहें वैसा इसे बनावें, रक्खें, भोग्य भूत समझें उनकी इच्छा पर निर्भर है । प्रयोजन यह कि इसके सब सम्बन्ध भगवान् के साथ हैं, भगवान् जिस प्रकार से चाहेंगे, वैसे इसे भोगेंगे । इस जीव को कुछ भी उजुर करना सर्वथा अनुचित है ॥१७॥

मूल - **अखण्ड नमः शब्दः उपाय वाचकः तत्र मकार वाच्यस्य मम रकार वाच्यः श्रीरामएवोपायः उपेय भूतश्च ॥१८॥**

अर्थ - अब अखण्ड नमः शब्द उपायवाचक है वहाँ पर 'मकार' वाच्य मैं जो जीव हूँ तिसको 'रकार' वाच्य श्रीरामजी ही उपाय तथा उपेयभूत हैं । तात्पर्य यह है कि जब पंचमपद 'नमः' यह माना जायगा तब पंचम पद 'नमः' यह उपाय वाचक है । अर्थात् जीव को भगवान् के प्राप्ति के लिये दूसरा उपाय नमस्कार छोड़कर नहीं है, किन्तु सर्वस्व समर्पण पूर्वक भगवान् को नमस्कार करना ही भगवान् के प्राप्ति का उपाय है । इस तरह से पदों का अर्थ हुआ ॥ १८ ॥

अब मंत्र ही में 'अकार त्रय' दिखलाते हैं -

मूल - **राम इति बीजेनानन्यार्ह शेषत्वं रामाय इत्यनेनानन्यार्ह है भोग्यत्वं नमः शब्देनानन्योपायत्वमिति तात्पर्यार्थः ॥१९॥**

अर्थ - राम इस बीज से अनन्यार्हशेषत्व और रामाय इस पद से अनन्य भोग्यत्व और नमः इस शब्द से अनन्योपायत्व प्रतिपादित हैं । यह तात्पर्य्यार्थ है । अर्थात् जीव श्रीरामजी का अनन्य शेष है, यह बीज से तात्पर्य निकलता है । क्योंकि बीज में तीन पद हैं उसमें मकार-वाच्य श्रीराम के लिये है जैसा वे चाहेंगे वैसा उसे रक्खेंगे । वह कुछ कह नहीं सकता है। जैसे जड़ वस्तु शेषी के आधीन है वैसे ही चेतन होते हुये भी जीव श्रीरामजी का ही शेष है, वे यथेष्ट विनियोग (भोग) कर सकते हैं अर्थात् जैसे चन्दन-फूल-माला इत्यादि पुरुष का शेष है वह चाहे उसे जिस प्रकार से ग्रहण कर सकता है ऐसे ही चेतन भी परमात्मा श्रीरामजी का शेष है। और रामाय इस पद से यह जीव श्रीराम जी का अनन्य भोग्य है । भोग्य वस्तु भोक्ता की रुचि के अनुसार रहती है वैसे ही जीव को श्रीरामजी जैसे जब चाहें तब भोग सकते हैं । तात्पर्य यह है कि यह उन्हीं के लिये है, न दूसरे के लिये न अपने लिये, यह पहले कह आये हैं । और, नमः शब्द से अनन्य उपायत्व तात्पर्य से निकलता है । अर्थात् जीव को नमस्कार ही मात्र एक उपाय है, सदा नमस्कार करना परमात्मा की प्राप्ति का मुख्य उपाय है ॥१९॥

॥ प्रथम रहस्य समाप्त ॥

इस तरह संक्षेपतः प्रथम रहस्यार्थ कहकर श्री अग्रस्वामीजी अब द्वितीय रहस्य को कहते हैं :-

अथ द्वितीयं रहस्यम्

मूल - **द्वितीयं रहस्यं श्रीराम:शरणम ममेत्यष्टाक्षरात्मकं पदत्रयं तत्र प्रथमं पदं श्रीराम इति द्वितीयं पदं शरणमिति ममेति तृतीयं पदम् ॥१॥**

अर्थ - द्वितीय रहस्य **'श्रीरामः शरणं मम्'** यह अष्टाक्षर मंत्ररूप है तहाँ पर पहला पद **'श्रीराम'** है, दूसरा **'शरणं'** और तीसरा पद **'मम्'** है ॥१॥

मूल - **तत्र श्रीशब्देन समस्त समाश्रयणीयापरमात्माश्रित निखिलजीव दोष निहंतृ श्रीरामं भगवंतं चेतनाचेतन विज्ञापनं श्रावन्ती स्वगुणैरखिलं विश्वं पूरयती भगवती श्रीसीतोच्यते ॥२॥**

अर्थ - प्रथम पद में जो **'श्री'** शब्द है उससे भगवान् की अविनाशभूता दिव्य शक्ति **श्रीसीतापद-वाच्या जनकनन्दिनीजी** को जानना चाहिए। वे समस्त जगत् की आश्रयणीया हैं । अर्थात् सब चेतन इन्हीं का आश्रय लेने से भगवान् श्रीरामजी के प्राप्ति के अधिकारी हो सकते हैं अन्यथा नहीं । तथा श्रीराम जी के आश्रित निखिल जीवों के सब दोषों को नाश करने वाली हैं और भगवान् श्रीरामजी को चेतन अचेतन सबकी ओर से विज्ञापन (प्रार्थना) सुनाती रहती हैं तथा अपने गुणों से सब विश्व को पूर्ण किये हुए हैं । और भगवती हैं अर्थात् जैसे ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य्य, वीर्य्य, तेज श्रीरामजी में पूर्ण हैं अतः वे मुख्य भगवत् शब्दवाच्य हैं, वैसे ही इनमें भी ज्ञान शाक्त्यादि षड्गुण पूर्ण हैं इसी से भगवती कही जाती हैं। ये पाँच विशेषण श्री मिथिलेश किशोरी जी के कहे गये हैं, वे सब 'श्री' शब्द से प्रत्यय और धातुओं के भेद से भिन्न भिन्न अर्थ वाले तत्तव्युत्पत्ति से सिद्ध होते हैं । विस्तार भय से यहाँ नहीं लिखा गया है ॥२॥

मूल - **तथा राम पदेन वात्सल्य, स्वामित्व, सौशील्य, सौलभ्य, सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तित्वावाप्तसमस्तकामत्व, सर्वजगत्कारणत्व, सकल फलप्रदत्व, निरवधिकदयानुकम्पा, करुणा, सौंदर्य्यं माधुर्य्याद्यनन्तगुणगणविशिष्टो रामः प्रतिपाद्यते ॥३॥**

अर्थ - अब शरणागति मंत्र में त्रिपद में जो राम पद है उससे वात्सल्य स्वामित्व, सौशील्य, सौलभ्य, सर्वज्ञत्व, सर्वशक्तित्व, अवाप्तसमस्तकामत्व, सर्वजगत्कारणत्व, सकलफलप्रदत्व तथा निरवधिक दया, कृपा अनुकम्पा, करुणा, सौन्दर्य्य, माधुर्य्यादि अनन्तगुणविशिष्ट श्रीरामजी प्रतिपादित होते हैं। तात्पर्य यह है कि राम शब्द से परब्रह्म श्रीरामजी का बोध होता है परंच उनमें अनन्त गुण हैं उन गुणों से विशिष्ट वे (रामजी) हैं, केवल निर्गुण (गुणशून्य) नहीं कहता है, किन्तु उनमें इतने गुण पूर्ण हैं एक तो वात्सल्य, दूसरा स्वामित्व, तीसरा सौशील्य, चौथा सौलभ्य, पाँचवाँ सर्वज्ञत्व, छठवाँ सर्वशक्तित्व, सातवाँ अवाप्तसमस्त कामत्व, आठवाँ सर्वजगत्कारणत्व, नवमाँ सकलफलप्रदत्व । इसी

तरह अवधि रहित दया, कृपा, अनुकम्पा, करूणा, सौन्दर्य्य, माधुर्य्य इत्यादि अनन्त गुणगण उनमें सदा एक रस रहते हैं । इन गुणों का अर्थ श्रीभगवत्गुण दर्पण और भाषा में श्रीरघुवरगुणदर्पण इन दो ग्रन्थों से जिज्ञासुओं को जान लेना चाहिए । ग्रन्थ बहुत बढ़ जायेगा इस भय से यहाँ पर उन गुणों का अर्थसंक्षेप ही से नाम मात्र ही लिखा गया है ॥३॥

मूल - **उपाय: शरण शब्देन उच्यते ॥४॥**

अर्थ - द्वितीय रहस्य में जो **'शरणं'** यह पद है वह उपाय को कह रहा है । जीव को भगवान् की प्राप्ति के लिए या सर्वदु:खनिवृत्ति के लिए 'शरणं' यही एक उपाय है । अर्थात् शरणागति को छोड़कर दूसरा उपाय नहीं है जिससे सर्वदु:ख निवृत्तिपूर्वक परम सुखमय भगवत्प्राप्ति होवे, इसके लिए एक मात्र उपाय शरणागति ही है । इति ॥४॥

मूल - **ममेति भगवच्छेषत्व ज्ञानानन्दत्वाद्युक्त लक्षणस्य जीवस्य मम उक्त गुणविशिष्टया सीतया सहितो वात्सल्यादि गुणविशिष्ट: श्रीराम एव स्वप्राप्ते: उपाय: उपेयश्च ॥५॥**

अर्थ - **'मम'** यह पद इस अर्थ को कहता है कि भगवच्छेषत्व ज्ञानानन्दत्वादि उक्त लक्षण जो जीव है उसके लिए उक्तगुण विशिष्टा (अर्थात् जो श्री शब्द से विशेषण कह गये हैं उन सब गुणों से विशिष्ट) श्रीजनकात्मजाजी के सहित वात्सल्यादि गुणविशिष्ट श्रीरामजी ही अपने प्राप्ति के लिए उपाय और उपेय भी हैं । उपाय कहते हैं **'साधन'** को और उपेय साधन का फलभूत **'सिद्धि'** है अर्थात् श्रीरामजी की प्राप्ति में श्री राम जी ही साधन तथा श्रीरामजी ही सब साधनों के फल हैं । तात्पर्य यह है कि श्रीरामजी की प्राप्ति के लिए उनकी कृपा साधन है, जिस पर कृपा करें उसको दर्शन देवें, अपनी प्राप्ति करावें - यह द्वितीय रहस्य हुआ ॥५॥

॥ द्वितीय रहस्य समाप्त ॥

अब तृतीय रहस्य कहते हैं-

अथ तृतीय रहस्यम्

मूल - **सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।**
अभयं सर्व भूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं ममेति ॥१॥

अर्थ - तीसरा रहस्य यह है श्रीरामजी ने कहा है कि **"मैं आपका हूँ"**, इस तरह याचना करता हुआ एक बार भी शरण में आये हुए प्रपन्न के लिए मैं सब प्राणियों से अर्थात सब तरह से उसे **अभय** प्रदान करता हूँ **यह मेरा व्रत है**" ॥१॥

मूल - **सकृदेवएकवारमेवानावृत्ति लक्षणांप्रपन्नायेति मानसीं तवास्मीतिच याचते इति वाचकीं प्रपत्ति कृतवते अधिकारिणे अनालोचित विशेषाशेष लोकशरण्यो रघुकुलोद्भवो रामोऽहं सर्व भूतेभ्यो अभयं ददामि दद्यामित्यर्थः ॥२॥**

अर्थ- 'एक बार ही' अर्थात् अनावृत्तिलक्षणा, 'प्रपन्नाय' यह मानसी और **'तवास्मीति च याचते'** यह वाचकी प्रपत्ति करने वाले अधिकारी के लिए अनालोचित विशेष अशेष लोकशरण्य रघुकुल में प्रगट हुआ मैं राम सर्वभूतों से उसे अभय देता हूँ -तात्पर्य्य यह है कि प्रपत्ति विद्या में आवृत्ति का प्रयोजन नहीं है । अर्थात् शरणागति में बारम्बार **'शरण हूँ' 'शरण हूँ'**, इत्यादि कई बार कहने का प्रयोजन नहीं है । किन्तु एक बार ही जो आकर मैं आपका हूँ, प्रपन्न हूँ, शरण हूँ, इस तरह याचना करता है । **'प्रपन्नाय'** यह **मानसी प्रपत्ति** है, **'तवास्मीति च याचते'** यह **वाचकी प्रपति** है । ऐसी प्रपत्ति (शरणागति) के करने वाले अधिकारी जीव के लिए मैं कुछ भी, उसकी जाति गुण, क्रिया आदि का विचार नहीं करता हूँ किन्तु सर्व लोकशरण्य मैं हूँ अर्थात् लोक में कोई भी हो जो मेरे शरण आवेगा उसके कुछ जाति, गुण, क्रिया आदि का विचार मैं नहीं करता हूँ उसे शरणागति देता हूँ, अपना लेता हूँ क्योंकि मैं रघुकुलोद्भव हूँ, दान, दया, दाक्षिण्य, शरणागतरक्षण यह रघुकुल में उत्पन्न हुए सब पुरुषों का गुण है, तब मैं उस कुल में उत्पन्न होकर सबको शरण क्यों नहीं दूँगा । इस पर भी मेरा नाम राम है सर्वलोकों का आश्रयभूत, उत्पादक, पालक, सबको रमाने वाला मैं राम हूँ इसी से उस प्रपन्न (शरणागत) के लिए मैं सर्वभूतों से उसे अभय देता हूँ । भूत शब्द यहाँ प्राणिवाचक है ॥२॥

मूल - **'सर्व भूतेभ्यः' इति पंचमी चतुर्थीच । पंचमी पक्षे अभयमिति संकोचेमान भावात भय हेतुभ्यः सर्वेभ्यो भूतेभ्यः स्वस्मादति अभयं ददामि ॥३॥**
अर्थ - **'सर्व भूतेभ्यः'** यह पंचमी विभक्ति है और चतुर्थी भी है । पंचमी पक्ष में **'अभयं'** यह संकोच में प्रमाण का अभाव है । इससे भय के हेतुभूत सम्पूर्ण प्राणियों से तथा अपने से भी मैं अभय देता हूँ - तात्पर्य यह कि **'अभयं'** कहने से संकोच में कोई प्रमाण नहीं है अर्थात् सब जीवों से तथा अपने से भी अभय दे देते हैं । अथवा श्रीरामजी को अभय देने में किसी का संकोच हो ऐसा नहीं है, क्योंकि यही सर्वेश्वर हैं, इनसे कोई बड़ा है नहीं, जिसका यह संकोच करेंगे । इससे भय के हेतु तात्पर्य यह है कि जहाँ जहाँ से, जिन जिन से इस जीव को भय है उन सबों से मैं अभय देता हूँ । बहुत से ऐसे भी होते हैं कि सबसे अभय करने पर भी अपने तरफ से उसे भय दिया करते हैं, सो भी नहीं । श्रीराम जी कहते हैं कि हम अपने से भी उसे अभय कर देते हैं अर्थात् हमारा भय भी उसे नहीं रहता है, हमारे गुण स्वभाव से, वह हमसे भी अभय रहता है ॥३॥

मूल - **अनेन सर्वस्येशान इत्यादि गुण जातं सूचितम् ॥४॥**
अर्थ - इससे 'सर्वस्य वशी' 'सर्वस्येशान' इत्यादि श्रुतियों में कहे हुये जो जो गुण समूह हैं, वे भी इस वचन से सूचित हुए। तात्पर्य यह है कि जो श्रीरामजी सबके मालिक तथा सबको अपनी शक्ति से अपने वश में करने वाले न होते तो सबसे अभय देने की प्रतिज्ञा ही कैसे करते, क्योंकि जो अपने वश में नही है उससे अभय कैसे दे सकेंगे इससे **श्रीरामजी सर्वेश्वर हैं, परात्परब्रह्म हैं**, यह भी आप ही के कहने से सूचित हुआ ॥४॥

मूल - **चतुर्थी पक्षे च सर्वेभ्यो अभयं न केवलंविभीषणाय ॥५॥**
अर्थ - चतुर्थी पक्ष में सबको हम अभय देते हैं केवल विभोषण ही के वास्ते नहीं अर्थात् जो हमारे शरण में आवे वह कैसा भी हो हीन, दीन, मलीन, कुत्सित, बीभत्स धर्माधर्मवाला कोई भी हो जो शरण में आवेगा हम सबको अभय देंगे ॥५॥

मूल - **अनेन प्रपत्ति विद्यायां सर्वेषां देवमनुष्यादीनां जीवानामधिकारः सूचितः ॥६॥**
अर्थ - इससे यह भी आया कि प्रपत्ति विद्या में देव मनुष्यादि सब जीवों का अधिकार है । तात्पर्य यह है कि प्रपत्ति विद्या (अर्थात् शरणागत होने में) केवल देवता अथवा मनुष्य ही हों यह नहीं है बल्कि कोई भी हो सब जीवों का अधिकार इस शरणागति में है। जैसे कर्म काण्डादिक में अधिकार का नियम है कि इस कर्म को ब्राह्मण या त्रयवर्णिक ही कर सकता है दूसरा नहीं ऐसा इसमें नहीं है । अपने अभाग्यव।श संस्कार की प्रेरणा से जीव भले ही शरणागति धर्म से विमुख रहे, पर इसमें अधिकार सबका है सबको भगवान् अंगीकार करते हैं, यह सूचित किया गया ॥६॥

मूल - **अभयंददाम्येतद्व्रतं ममेत्यनेन कस्यां चिदपि दशायां परित्यागायोग्यमित्यर्थ ॥७॥**
अर्थ - **"अभयं ददामि एतद्व्रतं मम"** - 'मैं शरण में आये हुए सब जीवों को अभय देता हूँ, यह मेरा व्रत है' यह कहने से किसी दशा में भी वह शरणागत परित्याग के अयोग्य है, अर्थात्, चाहे हम धाम में रहें, वह जीव कैसा भी अयोग्य होय उसका त्याग करना हमको सर्वथा अशक्य है, हम त्याग उसका कर ही नहीं सकते हैं, सब सामर्थ्य हमारे में है, परंच शरणागत आये हुये जीव के त्याग करने की सामर्थ्य ही नहीं है इसी से उसका त्याग कभी हो ही नहीं सकता है ॥७॥

मूल - **अभयमेव मोक्षो नाम, अथ सोऽभयं गतो भवति आनंद ब्रह्मणो विद्दान् न विभेति कुतश्चन, इति ब्रह्मविद्या फलत्वेन श्रवणात् ॥८॥**
अर्थ - **'अभय'** यह **मोक्ष** का नाम है क्योंकि श्रुति कहती है कि **'अथ सोऽभयं गतो भवति'** वह जीव अभय को प्राप्त होता है । ओर भी लिखा है कि ब्रह्म के आनन्द को जानने वाला अथवा ब्रह्मरूप आनन्द को जानने वाला विद्वान् कहीं से नहीं डरता है, अभय को प्राप्त हो जाता है। यह अभय होना ब्रह्मविद्या का फलरूप से कहा गया है। **इस श्रुति से निश्चय हुआ कि अभय मोक्ष का नाम है** । श्रीरामजी अभय प्रदान की प्रतिज्ञा करते हैं इससे कोई भी जीव हो जो शरणागत होगा उसे मोक्ष प्रदान अवश्य करेंगे ॥८॥
(भाव :- **वैष्णव परंपरा में मोक्ष का अर्थ जीव द्वारा भगवान के धाम की प्राप्ति कर उनकी भक्तिरूपी सेवा में संलग्न होना कहा गया है । भगवान के धाम को प्राप्त करने के पश्चात भी उसे उसकी सेवा के अनुरूप दिव्य देह की प्राप्ति होती है, उसके स्वरूप का नाश नहीं होता है।**)

इति श्रीमदग्रस्वामि विरचिते रहस्यत्रये वाक्यार्थः समाप्तः ।

इस तरह श्रीमान् अग्रस्वामी जी से विरचित यह रहस्यत्रय वाक्यार्थ समाप्त हुआ ।

इति श्री अनन्त पण्डितराजमहाराज श्री स्वामि रामबल्लभाशरणज श्रीजानकीघाट कृत रहस्यत्रय दीपिका टीका

-समाप्त-